पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा १३
तारीख ०७-०२-१९८९, प्रवचन नंबर ११३

यह समयसारजी शास्त्र है, परमागम शास्त्र है। समयसार का अर्थ शुद्धात्मा है। जो शुद्धात्मा है वो स्वभाव दृष्टि से देखो तो बंध का कारण नहीं है और मोक्ष का कारण भी नहीं है, बंध का कर्ता भी नहीं है और मोक्ष का कर्ता भी नहीं है, नवतत्त्व का कर्ता नहीं है और नवतत्त्व उत्पन्न होने पर भी वो नवतत्त्व के उत्पाद का कारण नहीं होता है।

ये समयसार की १३वीं गाथा कोई अपूर्व है, सम्यग्दर्शन की गाथा है। ११वीं गाथा में भूतार्थ के आश्रय से यानि अपना शुद्धात्मा जो है, जो परिणाममात्र से भिन्न सामान्य तत्त्व है, सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ होने पर भी, सामान्य की दृष्टि से देखो तो विशेष का उसमें अभाव है; विशेष यानि परिणाम का जिसमें अभाव है। परिणाममात्र से आत्मा विभक्त अर्थात् जुदा है, भिन्न है और अपने अनंत गुणों से अभिन्न, एकत्व है। ऐसा शुद्धात्मा, अनंत-अनंतकाल बीता चार गति में रुलते-रुलते, उसमें अभूतार्थनय से तो नवतत्त्व को जाना, अभूतार्थनय से यानि असत्यार्थनय से अर्थात् व्यवहारनय से नवतत्त्व को जाना। नवतत्त्व (को) व्यवहारनय से जाना। कैसे जाना? कि (यह) आत्मा है, जहाँ तक भेदज्ञान का अभाव है तहाँ तक वो आत्मा अज्ञानी है और अज्ञानी है तहाँ तक वो पुण्य, पाप, आस्रव, बंधतत्त्व का कर्ता है और पुण्य-पाप का परिणाम ये आत्मा का कर्म है, ऐसे आत्मा को अशुद्ध पर्याय का कर्ता मानकर अनंत-अनंतकाल से परिणमता है, एक बात।

अभी एक दूसरी बात इससे सूक्ष्म है थोड़ी। जब ज्ञानी मिले तब वो ज्ञानी फरमाते हैं कि प्रभु! तेरा आत्मा शुभाशुभभाव को करे ये तेरा स्वभाव नहीं है, कर्तापन छोड़ दे। तू तो ज्ञानमय आत्मा है, दर्शनमय है और जो ये परिणमता है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमता है, निश्चय रत्नत्रयरूप से परिणमता है - संवर-निर्जरा-मोक्षरूप, और संवर-निर्जरा-मोक्षरूप परिणमता है तो संवर-निर्जरा-मोक्ष का कर्ता है। उसको संवर-निर्जरा-मोक्ष हुआ नहीं (है), ख्याल रखना। तो ऐसे परिणाम से सापेक्ष परिणमता है, एक (बात), और परिणमता है सो कर्ता और परिणाम सो कर्म; ऐसे परिणाम के साथ कर्ता-कर्म के संबंध की बुद्धि रखकर अभूतार्थनय से नवतत्त्व को जाना। बात जरा सूक्ष्म है मगर अमृत जैसी है। ये १३वीं गाथा का रहस्य है।

योगानुयोग आज अपने त्रिलोकनाथ भगवान नेमिनाथ प्रभु का आज जन्म हुआ है, जन्मदिन है, मांगलिक दिवस है। आहाहा! गिरनार पर उनकी दीक्षा थी और ५४ या तो ५६ दिवस को ध्यान में मग्न होकर केवलज्ञान हो गया। ५६? ५६ दिवस लो। आहाहा! ज्यादा नहीं ५६ दिवस में तो (केवलज्ञान), दो महीने (भी) पूरे नहीं। आहाहा! शुक्लध्यान की श्रेणी लगाकर ध्यान में मग्न हो गये और केवलज्ञान का भड़का (विस्फोट) हो गया और समवशरण की रचना भी हुई और दिव्यध्वनि भी खिरी।

उसमें, नेमिनाथ भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि अभूतार्थनय से नवतत्त्व को सब जानते हैं,

मानते भी हैं, ऐसे जानते और मानते होने पर भी मिथ्यादृष्टि रह जाता है। क्या कहा? ये आत्मा परद्रव्य का कर्ता-भोक्ता तो है ही नहीं तीनकाल में, वो बात तो दूर रहो मगर पराश्रित परिणाम और स्वाश्रित परिणाम वो भी सापेक्ष कथन हैं भैया! जरा शांति से सुनना। आहाहा!

ऐसे अभूतार्थनय से यानि परिणाम को आत्मा के साथ सापेक्ष बनाकर, परिणाम का कर्ता मैं हूँ और उसका फल मैं भोगता हूँ, संसार अवस्था में अकेला आत्मा कर्मचेतना-कर्मफलचेतनारूप परिणमता है और दुख भोगता है, ऐसा प्रवचनसार (गाथा १२३-१२४) के अंदर पाठ है। आहाहा! और जब आत्मा की अनुभूति होती है तब ज्ञान चेतनारूप परिणमता है, तो शुद्ध कर्मचेतना और शुद्ध कर्मफलचेतना (रूप) आनंद को भोगता है। मगर ऐसा कर्ता-कर्म का सबंध परिणाम के साथ आत्मा का है, वो व्यवहारनय का कथन है; वो व्यवहारनय अभूतार्थ - झूठा है। आहाहा! आत्मा परिणाम से रहित है और परिणाम आत्मा से रहित है; परस्पर निरपेक्ष होने से कर्ता-कर्म की सिद्धि नहीं है। ऐसी बात सुनी नहीं है तूने कभी भी। नवतत्त्व को अभूतार्थनय से जाना, आ गया, सब आ गया (शास्त्र में)। अभूतार्थनय से यानि आत्मा परिणमता है और आत्मा कर्ता है और आत्मा भोक्ता है; मगर आत्मा अकारक-अवेदक है वो बात जगत ने सुनी नहीं है। आहाहा!

तो परिणाम होता है कि नहीं साहब? हाँ प्रभु! परिणाम तो होता है, मगर परिणाम का करनेवाला तू नहीं है। तो शिष्य का प्रश्न आया कि परिणाम होता है, आप 'हाँ' बोलते हो और करने की 'न' बोलते हो - ये क्या बात है? न होवे तब तो मेरा प्रश्न नहीं है, यदि परिणाम उत्पन्न ही नहीं होता है तब तो मेरा प्रश्न नहीं है। मगर परिणाम उत्पन्न होने पर भी और भगवान की हाजिरी होने पर भी, भगवान कौन? समझे? इस (निज) परमात्मा की हाजिरी में परिणाम उत्पन्न होता है, परमात्मा से नहीं। परिणाम - नवतत्त्व उत्पन्न होते हैं परंतु भगवान से नहीं; भगवान की हाजिरी में होता है वो बात सही है। और जिसको भगवती दृष्टि हो गई, वो तो जानते हैं कि परिणाम प्रगट होता है, मैं करनेवाला नहीं हूँ। होता है, तो भी अकर्ता रहता है। होने पर भी अकर्ता रहता है।

तो अभूतार्थनय से तो परिणाम के साथ कर्ता-कर्म सबंध है ऐसा व्यवहारनय से कथन बहुत आता है मगर ११वीं गाथा में कहा कि व्यवहारनय सब अभूतार्थ है। आहाहा! असत्यार्थ है, अविद्यमान अर्थ को प्रसिद्ध करता है। कर्ता नहीं, फिर भी आत्मा धर्म के परिणाम को करता है। धर्म के परिणाम को करता है कि होते हुए धर्म के परिणाम को जानता है?

अधर्म के परिणाम को करता है कि अधर्म होता है उसको जानता है? धर्म का परिणाम होता है उसको करता है कि जानता है? आहाहा! कि मात्र जानता है, करनेवाला नहीं है। आत्मा को अब तू करनेवाला मत देख, ज्ञाता को कर्तापने मत देख। ज्ञाता को कर्तापने मत देख, परिणाम तो होता है, परिणाम होगा, अनादि-अनंत परिणाम तो होते रहते हैं और आत्मा किया करता है, ऐसा है नहीं। होता है उसका करना हो सकता नहीं; और नहीं होता हो उसका भी करना हो सकता नहीं। होता है उसको भी जाने आहाहा! प्रगट होता है उसको जाने, बढ़े परिणाम, शुद्धि की वृद्धि उसको भी जाने; जाने जाने और जाने, और पूर्ण मोक्ष हो तो भी जाने। जाने, परंतु करना आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! उपयोग में भी करना नहीं (है), शुद्धोपयोग में भी करना नहीं (है) और शुद्धात्मा ज्ञायक में भी करना

नहीं। जानना, जानना, जानना, जानना, जाननस्वभाव से भरा हुआ भगवान आत्मा है। द्रव्य, गुण और पर्याय में जानने का स्वभाव, शक्ति की व्यक्ति- शक्ति में भी जानना, व्यक्ति में भी जानना। कि शक्ति में जानना और व्यक्ति में करना? है नहीं! आहाहा! सम्यग्दर्शन क्यों प्रगट नहीं होता? - ये प्रश्न है बहुत लोगों का। परंतु परिणाम को सापेक्ष देखते हुए कर्ताबुद्धि रह गई। आहाहा!

एक बिल्कुल नया मुमुक्षु है। थोड़ी चर्चा हुई। आहाहा! निरपेक्ष परिणाम और निरपेक्ष परिणाम की उत्पत्ति परिणाम से होती है - ऐसा देखो, परिणाम की उत्पत्ति मेरे से होती है ऐसा अब मत देख। तब कहा, ये सापेक्ष है न? कि भाई आप जो सापेक्ष कहते हैं न, उसमें तो कर्ताबुद्धि आ जाती है। अरे! तू नया (है) अभी तेरे को ४५ साल का अभ्यास नहीं, गुरुदेव का इतना परिचय नहीं, बाहरगाँव का लड़का, हिंदी भाषी, यह तू क्या बोलता है? (उसने कहा) कि हाँ भाई! सापेक्ष में तो कर्ताबुद्धि हो जाती है। अच्छा! निरपेक्ष में? कि ज्ञाता हो जाता है। आहाहा! देखो!

ये भूतार्थनय से नवतत्त्व जाने, पर्याय! पर्याय का विशेषण है भूतार्थ, खीमचंदजी! मूल में है। और उसका फल सम्यग्दर्शन (है) नियम से। ओहो! परिणाम को सत्-अहेतुक जाने, स्वद्रव्य से नहीं (होता) और परद्रव्य से भी नहीं (होता), निरपेक्ष (होता है)। आहाहा! स्वकाल उसका है। आहाहा! उत्पन्न होने का स्वकाल है उसका; जन्मक्षण है। आहाहा! उत्पाद होता है और व्यय भी होता है; (मैं) करता हूँ, उत्पन्न करता हूँ और उन पर्यायों को टालता हूँ - ऐसा है नहीं। इन सब व्यवहारनय के कथनों का कोई पार (सीमा) नहीं।

मगर एक ११वीं गाथा लिखकर कमाल कर दिया! दृष्टि दे दी हमको (कि) व्यवहारनय पूरा ही अभूतार्थ है। आहाहा! जितना जिनवाणी में सर्वज्ञ भगवान ने व्यवहार कहा, वो किसने कहा? नवतत्त्व किसने कहे? दूसरे स्थान पर तो है ही नहीं, कहनेवाले तो सर्वज्ञ भगवान हैं कि नहीं? सर्वज्ञ भगवान का कहा हुए व्यवहार सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया, कि उस व्यवहार का अवलंबन-लक्ष छोड़ दे, परिणाम परिणाम से होता है, तेरे से होता नहीं है। आहाहा! धर्म के परिणाम धर्मी नहीं करता है, अधर्म की बात तो (दूर रही)। हाँ! धर्म का परिणाम निश्चित होता है, उसको निश्चित जानता है परंतु करता नहीं है। जानता है, वो भी थोड़े टाइम कहना पड़ता है क्योंकि कर्ता नहीं है इसलिए तू उसका ज्ञाता है। कर्तापने की बुद्धि छोड़ दे। आहाहा!

भाईसाहब भोपालवाले! नाम भूल गया। राजमलजी! हाँ! मुम्बई गए थे। कर्ता नहीं है भैया, तू ज्ञाता है। अच्छा! ज्ञाता तो है कि नहीं? कि हाँ, ज्ञाता है। दो-चार महिने वो ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। फिर गुरु के पास आया कि साहब आपने कहा कि राग का, परिणाम का मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ। तो अभी अनुभव क्यों नहीं होता है मेरे को? शिष्य पूछने आया गुरु के पास। (गुरु ने कहा) कि वो तो पहले school (कक्षा) का पाठ था, अभी दूसरा एक पाठ बाकी (रह गया)। साहब! एक ही (पाठ) है कि दूसरा, तीसरा, चौथा पाठ (भी) है? कि नहीं! दो ही पाठ हैं। एक पाठ में तू pass (उत्तीर्ण) हो गया। परीक्षा ली गुरु ने। समझे? परीक्षा लेकर समझा, ओहो! रुचिवाला जीव है, आत्मार्थी लगता है पक्का। आहाहा!

अभी दूसरा पाठ सुन ले कि तू उसका ज्ञाता नहीं है, भेद का ज्ञाता नहीं है, भेद का। भेद को

ज्ञेय बनाने से ध्येय और ज्ञेय बनाने से रागी प्राणी को राग की उत्पत्ति, विकल्प की उत्पत्ति होती है। तो क्या करना साहब? कि भेद को, पर्याय को जानना बंद कर दे। कि साहब कथंचित् कि सर्वथा? कि सर्वथा बंद कर दे। तो साहब सर्वथा बंद कर दूँ तो स्याद्वाद में कोई बाधा आयेगी? कि नहीं! स्याद्वाद का जन्म होगा, स्याद्वाद जरूर जन्मेगा। आहाहा!

अच्छा साहब! गुरु के पास से चला गया। तीन दिन में तो वापस आया, ज्यादा टाइम नहीं लगा उसको। पक गया था, पक गया (था)। तीन दिन के बाद आ गया और लकड़ी जैसे पड़ती है न, लकड़ी सीधी, लकड़ी तो सीधी पड़ती है न? आड़ी-टेढ़ी लकड़ी नहीं होती है। तो सीधा गुरु को वंदन कर दिया। आहाहा! प्रभु! आपने आत्मा दिया। आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि मेरे से मैं प्रगट हुआ। आहाहा! સજ્જન ઉપકારને ઓળવતો નથી (सज्जन उपकार को कभी भूलता नहीं है)। हिन्दी नहीं आता है इसलिए गुजराती (में कहा)। સજ્જન ઉપકારને ઓળવતો નથી, इसका हिन्दी क्या?

मुमुक्षु: सज्जन उपकार को नहीं भूलते।

पू. लालचंदभाई: हाँ! सज्जन उपकार को कभी भूलता नहीं है। आहाहा! गुरु समझ गया। बस! काम हो गया? कि हाँ! आपकी कृपा से काम (हो गया)। दो ही पाठ? बोले दो ही पाठ, बस! आहाहा!

अभूतार्थनय से नवतत्त्व जाना, आत्मा के साथ पर्याय का संबंध रखा और पर्याय के साथ आत्मा का संबंध रखा, इससे आगे चलकर पर्याय के साथ कर्म का संबंध रखा और कर्म के साथ पर्याय का संबंध रखा, इससे आगे नौ कर्म के साथ पर्याय का संबंध रखा, इससे आगे लोकालोक के साथ संबंध रखा। आहाहा! अभूतार्थनय का कथन है। **नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः** (समयसार कलश २००) यह आत्मा का परद्रव्य के साथ कोई संबंध (नहीं है)।

परद्रव्य अर्थात्, अध्यात्म में परद्रव्य क्या है मालूम है? अध्यात्म में परद्रव्य किसे कहते हैं? परिणाम का नाम परद्रव्य है। अरे! छहद्रव्य का नाम परद्रव्य है ये तो सुना, परंतु परिणाम का नाम परद्रव्य? कि हाँ! परद्रव्य है। तीन-तीन आचार्य भगवान ने कहा है, एक आचार्य ने नहीं। कुन्दकुन्द आचार्य भगवान ने परिणाम को परद्रव्य, परभाव, हेय कहा (नियमसार, गाथा ५०), अमृतचंद्र आचार्य ने कलश में ये परद्रव्य कहा है और नियमसार के टीकाकार भावी तीर्थंकर उन्होंने भी परिणाम को परद्रव्य कहा। परिणाम, परद्रव्य के साथ, परद्रव्य; परिणाम, परद्रव्य के साथ कर्ता-कर्म सबंध नहीं है और निमित्त-नैमित्तिक (संबंध) नहीं है और ज्ञाता-ज्ञेय संबंध भी नहीं है। अभेदरूप से ज्ञाता-ज्ञेय सबंध तो आत्मा के साथ है, वो भी अभेदभाव से है। आहाहा!

तो ये अभूतार्थनय से जानते-जानते अनंतकाल गया परंतु भूतार्थनय से आत्मा को, परिणाम को नहीं जाना तो आत्मा के अंदर कर्तादृष्टि रह गई। परिणाम सत् स्वतंत्र-अहेतुक है। परिणाम होता है। आहाहा! होता है, मैं करनेवाला नहीं हूँ, मैं अकर्ता ऐसा ज्ञायक हूँ। जानन-जानन, आहाहा! जाननहार हूँ, ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! जाननेवाला हूँ और करनेवाला नहीं - इसका नाम द्रव्य का निश्चय है। क्या कहा? दृष्टि का विषय।

ज्ञायक हूँ। ज्ञायक हूँ ऐसे कहो या जाननेवाला हूँ ऐसा कहो, त्रिकाली द्रव्य; और ज्ञाता हूँ ऐसा कहो एक ही बात है। वो द्रव्य का निश्चय - द्रव्य का निश्चय आने के बाद पर्याय का निश्चय जहाँ तक

नहीं होता है, तहाँ तक अनुभूति नहीं होती है। द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय दो साथ में रहते हैं, साथ में एक समय में उत्पन्न होते हैं तब अनुभूति होती है। बिजली में भी दो wire (तार) रहते हैं न तब current (विद्युत धारा) आता है, ऐसा है।

अभी पर्याय का निश्चय क्या? पर्याय, ज्ञान की पर्याय पर को जानती है, स्व-पर को जानती है, आहाहा! ये ज्ञान की पर्याय का व्यवहार हो गया। ये सब बात समयसार में आई (है), हो! मेरे घर की बात नहीं है, है तो आत्मा के घर की बात। आहाहा! कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या? कि ज्ञान की पर्याय में अकेला ज्ञायक जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता है। आहाहा! **जाननहार जानने में आता है** और **वास्तव में पर जानने में नहीं आता** (सिद्धांतोनी सरवाणी बोल नंबर १), ऐसे अस्ति-नास्ति अनेकांत द्वारा सम्यक् एकांत ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति हो जाती है। पर को मैं जानता हूँ। भाई! एक बार आत्मा को जान ले और जानने के बाद परिणाम को जान। आत्मा को जानकर परिणाम को जान और परिणाम को जानने के बाद द्रव्य-पर्याय दोनों को जान। इससे आगे तो जाना ही मना है।

एक प्रवचनसार की गाथा (११४) है। आचार्य भगवान ने फरमाया कि तेरे में परिणाम जो उत्पन्न होता है, उसको जानना सर्वथा बंद कर दे। कि साहब सर्वथा? कि हाँ! सर्वथा बंद कर दे। तो ज्ञान का नाश नहीं होगा? कि नहीं! ज्ञान की उत्पत्ति होगी। अरे! जानना बंद करूँ और ज्ञान प्रगट होगा? कि हाँ! ये कला है, परिणाम को जाना, जानते-जानते, इंद्रियज्ञान से जानते-जानते अनंतकाल गया! बंद कर दे जानने का; भेद को जानने का सर्वथा बंद कर दे और द्रव्यार्थिक चक्षु उघाड़कर आत्मा को देख, तेरे को दर्शन हो जायेगा - स्वप्रकाशक कहा।

तो शिष्य ने क्षमा माँगी कि प्रभु! मैंने बहुत अपराध किया आज तक। सचमुच तो आत्मा का अपराध किया, व्यवहारनय से आपका भी अपराध किया कि आपकी बात मैंने सुनी नहीं। मेरा अपराध क्षमा कर दो प्रभु। आज तक मेरी भूल ऐसी हो गई कि पहले मैं परिणाम को जानता, जानते-जानते बाद में द्रव्य - आत्मा जणित (जानने में आ) जायेगा (ऐसा मानता था) और क्रमभंग किया, मैंने किया, मैंने क्रमभंग किया। आचार्य भगवान ने कहा कि अनुक्रम में आ जा अभी, अनुक्रम! One by one (एक के बाद एक) एक साथ दो नहीं। कि स्वपरप्रकाशक? तू सुन शांति से जरा धीरज रखकर सुन! स्वपरप्रकाशक का व्यवहार का पक्ष है हमको मालूम है, सब मालूम है, ज्ञानी को सब मालूम होता है। आहाहा! तो प्रभु! आचार्य भगवान ने कहा (कि) अनुक्रम में आ जा। क्रमभंग तूने किया। आहाहा!

भाईसाहब! कलकत्तावाले नाम भूल गया। तखतराज जी! आहाहा! कलकत्ता में इनके घर पर खाने गये थे। बहुत पुराने हैं अपने। तखतराज जी साहब! ये अंदर की बात समझने जैसी है। आहाहा! अंदर की बात है, बाहर की बात नहीं है। प्रभु! मैंने बहुत दोष किया, अपराध किया, क्षमा करो! आप कहते हैं कि अनुक्रम में आ जा। मैंने क्रमभंग करके पहले पर्याय को जाना (सोचा कि) द्रव्य तो जणित जायेगा आहिस्ते-आहिस्ते। ऐसा नहीं होता है! अनुक्रम में आ जा; पहले आत्मा को जान, बाद (में) आत्माश्रित या पराश्रित परिणाम को जान, आगे कुछ (और) है? कि हाँ! एक साथ द्रव्य-पर्याय दोनों को जान। निश्चयनय, व्यवहारनय और प्रमाण तीनों इसमें आ गए। क्या कहा?

फिर से। खीमचंदजी साहब! कि पहला व्यवहार कि पहला निश्चय? आहाहा! पहला निश्चय होता

है। निश्चय क्या? कि पहले परिणाम को जानना बंद कर दे; व्यवहारनय से तू जानता है, वो सर्वथा बंद कर दे। आहाहा! निर्दयरूप से बंद कर दे, व्यवहार का निषेध कर निर्दयरूप से हो! दया नहीं करना, मिथ्यात्व पर दया करने जैसी चीज नहीं है।

आहाहा! परिणाम को सर्वथा बंद करके तेरे शुद्धात्मा को जान अंतर्मुख होकर, दर्शन होगा। और दर्शन हुआ, दर्शन होने के बाद वो ज्यादा टाइम निर्विकल्पध्यान रहता नहीं है, तो सविकल्प में आते हैं तो (समयसार) बारहवीं गाथा खड़ी हो गई (कि) **व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान**। तो पहले निश्चय, बाद में परिणाम को जानना व्यवहार, दो आए, अभी तीसरा क्या? कि द्रव्य, पर्याय को युगपद् जानना उसका नाम प्रमाण। सब अंदर ही है, अंदर। प्रमाण, निश्चयनय, व्यवहारनय अंदर है, बाहर तो कुछ है नहीं। आहाहा! **प्रमाण से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं** (सिद्धांतोनी सरवाणी बोल नंबर ३)। ये बैठे हैं। अर्चना आयी है कि नहीं आयी? नहीं आयी। अच्छा! जयपुर में कहा था। गजब की बात है! प्रमाण की बाहर हैं सब ... ये ऐसा करता है, ये वैसा करता है, अरे! छोड़ न माथा-फोड़ी! तेरे साथ partnership (साझेदारी) कहाँ है? debit note (उधार-पत्र) या credit note (जमा-पत्र) तेरे पर आएगी नहीं।

भाईसाहब! आप computer (कंप्युटर) का व्यापार करते हैं; किसी को नफ़ा होता है तो credit note देता है? किशोरभाई, credit note भेजता है किसी को? नहीं भेजते हैं क्योंकि partnership है ही नहीं। आहाहा! परपदार्थ, परजीव कितना भी भावरूप से परिणमे, अपने को उसके साथ कोई नाता कुछ है नहीं। प्रमाण से बाहर जाना नहीं और अभी प्रमाण में आकर यानि द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु है, **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३०) है, **गुणपर्ययवत् द्रव्यं** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३८) है। आहाहा! अकेला समयसार पढ़ा है या तत्त्वार्थसूत्र पढ़ा है? सुन तो सही! आहाहा! **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, गुणपर्ययवत् द्रव्यं** पदार्थ की सिद्धि है, इसमें प्रयोजन की सिद्धि नहीं है। प्रयोजन की सिद्धि के लिए नय में आना पड़ता है। आहाहा! ज्ञायक हूँ और प्रमत्त-अप्रमत्तरूप मैं नहीं हूँ ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत नय-विभाग से करके परिणाम का लक्ष छोड़कर द्रव्यदृष्टि हो जाती है, अनुभव होता है। अनुभव के बाद परिणाम को भी जानता है और द्रव्य-पर्याय को भी ज्ञान जानता है। ज्ञान जानता है, मैं जानता हूँ ऐसा मत कहो! आहाहा!

'मैं' तो मेरे में रहने दो! ज्ञान काम करता है तो जानता हूँ मैं। ज्ञान का काम तो जानना है, उसको कोई रोक सकता नहीं, ज्ञान का स्वभाव जानना है। ख्याल रखना! ज्ञान का स्वभाव जानना है और करना (नहीं है)। सम्यग्दर्शन करना है, इतना तो ज्ञान का कार्य है कि नहीं? अरे भाई! करने की बात छोड़ दे अभी! जानना, जानना, जानना, जानना है। शुद्धि प्रगट हो (उसको) जान, वृद्धि हो- निर्जरा, देवचंद जी! जान, मोक्ष हुआ जानता है ज्ञान। आहाहा! ऐसा जानना आत्मा का कार्य है, करना तो कार्य नहीं है। ये बात जो १३वीं गाथा में (है कि) पर्याय को निरपेक्षपने जान तो तेरे को कर्ताबुद्धि छूट जायेगी। समझे! पर्याय सत्-अहेतुक है, परिणाम स्वयं होता है तो कर्ताबुद्धि छूट जाती है; अकर्ता ऐसे ज्ञायक पर दृष्टि आने पर अनुभव हो जाता है। और ये १३वीं गाथा में जो निरपेक्ष बात चली अपनी, सात दिन से चलती है। हें? आहाहा! अभी उसके आधार पर एक वह ११ भाग निकल चुके हैं न? प्रवचन रत्नाकर -

गुरुदेव के व्याख्यान। ये रमणभाई बैठे हैं। आहाहा! उन्होंने बनाया है सब। बनाया नहीं बन गया, उसको जानते हैं, वो भी जानते हैं, जाननहार है वो, सब जाननहार हैं। इधर बैठनेवाला कोई करनेवाला नहीं है। गुरु का शिष्य करनेवाला नहीं होता है, गुरु का शिष्य जाननेवाला रहता है और (जो) करता है वो गुरु का शिष्य है नहीं। कर्ताबुद्धि छोड़ दो!

मुमुक्षु: इसलिए तो आज तीर्थंकर का जन्म हो गया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तीर्थंकर का जन्म हुआ, तो वाणी में ऐसा ही आया है। भगवान की वाणी में आत्मा ज्ञानमय,

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहऽयं व्यवहारिणाम्॥६२॥(समयसार कलश ६२)।

ये तो पाठशाला में बच्चे पढ़ते हैं न? इसलिए श्लोक की कुछ कीमत नहीं लगती है लोगों को। बाकी कीमती है। आहाहा! एक श्लोक बस है, बहुत है, बहुत हो गया! आहाहा!

यह (प्रवचन रत्नाकर भाग १ गुजराती) बारहवाँ, बारह नंबर का page (पृष्ठ) है वो मैं पढ़ता हूँ, गुरुदेव की वाणी है। वो १३वीं गाथा जो है न, उसके अनुसंधान में ये मिल गया मेरे को, साक्षीरूप। आहाहा! कभी-कभी मेरे पर कष्ट आता है, बाहर का उपसर्ग, तब गुरु मेरी सहायता में आ जाते हैं। स्वयं आ जाते हैं।

मुमुक्षु: High court का (उच्च न्यायालय) फैसला! Supreme (सर्वोच्च न्यायालय)!

पू. लालचंदभाई: देखो सुनो! **भाई! सूक्ष्म बात है! नियमसार की दूसरी गाथा में (टीका में) कहा हैं कि भगवान आत्मा की सम्यग्दर्शन की पर्याय स्व-द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है।** (प्रवचन रत्नाकर भाग १ पृष्ठ १२) अर्थात् उत्पन्न होती है तब उसका लक्ष स्वद्रव्य ऊपर होता है परंतु परद्रव्य ऊपर होता नहीं; ये तो इसमें लिखा नहीं? ये इसमें लिखा है! आहाहा! ये आयेगा इसमें, इसमें ही आयेगा। तू जरा पढ़ने की आदत सही रख, तू निरपेक्ष जान। आहाहा!

ये **स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है, उसको व्यवहार की अपेक्षा नहीं है।** यानि व्यवहार रत्नत्रय का परिणाम हो, देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धान का शुभभाव हो तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, ऐसी अपेक्षा है नहीं, निरपेक्ष पर्याय प्रगट होती है, यानि पर से निरपेक्ष और स्व से सापेक्ष, इतना लिया। अभी वो भी आहिस्ते-आहिस्ते, धीमे-धीमे। आहाहा!

व्यवहार रत्नत्रय है इसलिए निश्चय रत्नत्रय प्रगट होता है? (ऐसा) तीनकाल में नहीं है, निरपेक्ष है! आहाहा! उसको तेरे **व्यवहार की अपेक्षा नहीं है**, व्यवहार अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय की अपेक्षा उसको नहीं है, एक बात। **निरपेक्षपने,** निरपेक्षपने यानि पर से निरपेक्षपने **स्व के आश्रय से होता है।** यानि स्व से सापेक्ष, पर से निरपेक्ष। आहिस्ते-आहिस्ते-आहिस्ते समझाते हैं। आहिस्ते-आहिस्ते समझाते हैं।

(अज्ञानी कहता है) हाँ! मेरा आया, सापेक्ष तो आया! अभी पूर्णविराम नहीं हुआ, जल्दी मत कर। आहाहा! तेरा नहीं आयेगा, तेरा तो आनेवाला है ही नहीं। आहाहा! **निरपेक्षपने स्व के आश्रय से होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय को, वस्तु जो उपादेय है उसका आश्रय है**, उसका आश्रय, ज्ञायक का आश्रय है, **ऐसा कहना,** ऐसा कहना **ये तो इसकी तरफ पर्याय ढली है** न, **उस अपेक्षा से कहने**

में आता है। आहाहा! जिसको निर्विकल्पध्यान में ज्ञायक दृष्टि में आया, उसको सब निरपेक्ष जानने में आता है। सापेक्ष से कहना पड़ता है वह भी उसको रुचता नहीं परंतु क्या करें? आहाहा!

इस अपेक्षा से ये कहने में आता है; नहीं तो ये सम्यग्दर्शन की पर्याय को षट्कारक के परिणमन में पर की तो अपेक्षा नहीं है, पर अर्थात् कौन? व्यवहार रत्नत्रय का परिणाम पर (है), देव-गुरु-शास्त्र की बात दूर है। आहाहा! चेतनजी! उसकी तो बात दूर है मगर **ये सम्यग्दर्शन की पर्याय के षट्कारक के परिणमन में पर की अपेक्षा नहीं परंतु द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं।** आहाहा! रमणभाई! आहाहा! श्रद्धा नाम का त्रिकाली गुण, उसकी अपेक्षा बिना श्रद्धा की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! सत् की पराकाष्ठा है! जिसे पर्याय सत् बैठी उसकी कर्ताबुद्धि छूट जायेगी। आहाहा!

द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। एक समय की विकारी पर्याय भी, अभी निर्विकारी पर्याय का उल्लेख करके अभी विकारी पर्याय, विकारी तो सापेक्ष होता है न? निर्विकारी को निरपेक्ष कहो तो कहो, मगर राग की पर्याय होती है उसमें तो निरपेक्ष आप नहीं कह सकते हो। सुन, जरा शांति से सुन! आहाहा! पराधीन दृष्टि तेरी हुई है। **एक समय की विकारी पर्याय भी अपने षट्कारक से परिणमकर विकारपने होती है। उसको भी द्रव्य या गुण के कारण की अपेक्षा नहीं;** आहाहा! मिथ्यात्व के परिणाम, आहाहा! इसका कारण भगवान आत्मा नहीं; कारणपने आत्मा को मत देख, कर्तापने आत्मा को मत देख, उसको देखेगा तब तक मिथ्यात्व का अभाव नहीं होगा। आहाहा! ये दोष हुआ है उसका मैं कारण हूँ (ऐसा) रहने दे अभी! आहाहा! गुरु मिले।

...**भी अपने षट्कारक से परिणमन कर के विकारपने होती है। उसको भी**, उसको भी, राग को भी, मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग चारों प्रकार ले लेना। आहाहा! **उसको भी द्रव्य या गुण के कारण की अपेक्षा नहीं है; कारण कि द्रव्य-गुण में विकार है ही नहीं। विकारी पर्याय को पर कारकों की भी अपेक्षा नहीं।** दर्शनमोह के उदय से मिथ्यात्व होता है और चारित्रमोह के उदय से राग होता है, ऐसा है नहीं! राग होता है तब उसको निमित्त कहने में (आता है)। यहाँ (अपनी पर्याय) से शुरू करो, यहाँ होता है तब उसको निमित्त कहने में आता है। आहाहा! **विकारी पर्याय को परकारको की भी अपेक्षा नहीं। वो एक समय की स्वतंत्र पर्याय** राग**,** हों! **स्वतंत्र पर्याय स्वयं अपने कर्ता-कर्म आदि से होती है।** कर्ता भी पर्याय और कर्म भी पर्याय; पर्याय का कारण भी पर्याय और पर्याय का कार्य भी पर्याय। ऐसे जब द्रव्य ऊपर दृष्टि पड़ने पर पर्याय सत् जानने में आती है, उसको सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु: बहुत जगह पर गुरुदेव ने ऐसा कहा है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! बहुत जगह पर आया है, बहुत जगह। वैसे तो ११ शास्त्र लिखे हैं न? कहते थे कि मेरा तो काम हो गया। आहाहा! मेरा तो काम हो गया, दूसरे का हो तो हो परंतु मेरा तो क्या घोंटना हुआ है! आहाहा! (ऐसा) कहते थे।

अपने कर्ता-कर्म आदि से होती है। वह पर्याय का कर्ता पर्याय स्वयं, करण स्वयं, वगैरह छहकारक स्वयं है। आहाहा! आत्मा तो निराला, ये निराला होकर और निर्मल दृष्टि से ज्ञायक को जानते-जानते परिणाम होते हैं, ऐसा जानता है, मैं करता हूँ ऐसा जानता नहीं है; मैं करता हूँ, यह अज्ञान

है। आहाहा! द्रव्य को जानने से पर्याय जानने में आती है, सत्पने, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! फिर उसके साथ कर्म के उदय आदि को भी सापेक्षपने ज्ञान जानता है। आहाहा! सब जाने, जानने की छूट है, करने की सख्त मनाई है।

आज ये नेमिनाथ भगवान का जन्म है। सब अंदर से भाव से संकल्प करो कि **मैं जाननहार हूँ** और **मैं करनार नहीं** (सिद्धांतोनी सरवाणी बोल नंबर १)। सबको सम्यग्दर्शन नहीं हो तो ले जाना हमारे पास से (ऐसा) ज्ञानी कहते हैं। कर्ताबुद्धि छोड़ो, कर्ताबुद्धि को छोड़ो। जाननहार, जाननहार, जाननहार, जाननहार, जाननहार। जाननहार तीनों काल? कि तीनों काल जाननेवाला है, एक समय भी करनेवाला नहीं है। करनेवाला मानता है वह ज्ञान का अज्ञान कर देता है। ज्ञान का अज्ञान कर देता है। आहाहा! आज का मांगलिक दिन है। हो! आहाहा! **उस पर्याय का कर्ता पर्याय स्वयं, करण स्वयं, वगैरह छह कारक स्वयं है।** अब आगे थोड़ा।

बंध अधिकार में आता है कि द्रव्य अहेतुक, गुण अहेतुक, अहेतुक यानि कारण उसका नहीं। **पर्याय अहेतुक। पर्याय जो सत्स्वभाव है वह स्वतंत्र और निरपेक्ष है।** दो शब्द, पर्याय - स्वतंत्र और निरपेक्ष। आहाहा! कि साहब! व्यवहार से तो सापेक्ष है न? परंतु निरपेक्ष तो निश्चय अभी करता नहीं, वहाँ सापेक्ष की बात तेरी आई! आहाहा! उसको सापेक्ष बिना रुचता नहीं। सापेक्ष हो तो अच्छा! कुछ अनेकांत हो, स्याद्वाद हो नहीं तो एकांत हो जाएगा। अरे! सम्यक् एकांत हो जायेगा, सुन तो सही! आहाहा! प्रभु! समय आया है। 'ना' मत कहना अभी। ये भगवान यहाँ जन्मे हैं नेमिनाथ प्रभु आज। आहाहा!

वह स्वतंत्र और निरपेक्ष है। अपेक्षा से कथन करने में आता है। यह कोहिनूर का हीरा! अपेक्षा से तो, अपेक्षा से कथन करने में आते हैं, बाकी वस्तु ऐसी है (नहीं)। कोहिनूर का हीरा! क्या? अपेक्षा से कथन करने में आता है। वह (तो) कथनमात्र है, ऐसा है नहीं। जैसा व्यवहारनय बात करता है वैसा स्वभाव है नहीं। यह पर्याय ऐसे है और इससे होती है, इससे होती है। आहाहा! एक कार्य में दो कारण तो कम से कम चाहिए (ऐसा मानता है)। आहाहा! एक कार्य में दूसरे कारण की अपेक्षा है नहीं। सुन तो सही तू! आहाहा! मिथ्यात्व की पर्याय दर्शनमोह के उदय की अपेक्षा बिना होती है। तो स्वभाव हो जाएगा? कि पर्याय का विभाव-स्वभाव हो जायेगा, हमको इष्ट है, पर्याय का (विभाव-स्वभाव)। हाँ! नियमसार में लिखा है। पर्याय का विभाव-स्वभाव है; विभाव-स्वभाव यानि धर्म। स्वभाव अर्थात् सम्यग्दर्शन गुण - ऐसा नहीं समझना, स्वभाव का अर्थ पर्याय का धर्म, पर्याय के धर्म का नाम स्वभाव है।

गुणाः स्वभावा भवन्ति (आलापपद्धतिः, श्री देवसेनाचार्य, सूत्र ११९), **स्वभावा गुणा न भवन्ति** (आलापपद्धतिः, श्री देवसेनाचार्य, सूत्र ११८)। गुणों को स्वभाव कहने में आता है, मगर स्वभाव को गुण कहने में नहीं आता। स्वभाव को धर्म कहने में आता है, 'नित्य-अनित्य' गुण नहीं अपितु धर्म है। आहाहा!

अपेक्षा से कथन करने में आता है, दूसरा तो उपाय (है नहीं)। समझाने के लिए अपेक्षा से कथन करने में आता है मगर जैसा कथन है ऐसा समझना नहीं। तखतराजजी! आहाहा! प्रभु का जन्मदिन है

न आज! मांगलिक दिवस है।

अपेक्षा से कथन करने में आता है कि पर्याय को द्रव्य उपादेय है। पर्याय को शुद्धात्मा उपादेय है। जब पर्याय आत्मा को उपादेय करे कि ज्ञायकभाव हूँ, ज्ञायकभाव वो मैं हूँ; उसका नाम उपादेय हुआ न? देह, वो मैं हूँ और राग वह मैं वो छूट गया, पर्याय में क्या आया? कि ज्ञायकभाव मैं हूँ। आहाहा! तो ज्ञायकभाव मैं हूँ, तो पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा नहीं है, सम्यग्दर्शन हुआ तब ऐसा भाव आया कि वो मैं हूँ। पर्याय से ले न तू, वहाँ से क्यों लेता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है!

कि पर्याय को स्वद्रव्य **उपादेय है। फक्त पर्याय,** खुलासा करते हैं, गुरुदेव खुलासा करते हैं। **फक्त पर्याय द्रव्य बाजू ढली,** जो पर्याय बहिर्मुख थी वह पर्याय अंतर्मुख हुई। आहाहा! मनसुखभाई! वो जो पर्याय बहिर्मुख थी वह पर्याय अंतर्मुख ढली, झुकी अंदर में, अंतर में। **फक्त पर्याय द्रव्य बाजू ढली अर्थात् आश्रय लिया**। इसने आश्रय लिया और उसने आश्रय दिया। पारिणामिकभाव कहता है कि तू मुझे रहने दे, मैं किसी को आश्रय देता नहीं। पर्याय कहती है (कि) मुझे विवेक तो करने दो। एक बार कह दे, दूसरी बार कहना मत। अद्भुत से अद्भुत! द्रव्यानुयोग अति सूक्ष्म और गंभीर है। आहाहा! अपनी योग्यता और गुरुगम! दो चीज - अपनी योग्यता और गुरुगम से समझ में आए ऐसा है।

मुमुक्षु: ज्ञानी का जन्म निरपेक्ष पक्ष को बताने के लिए है?

पू. लालचंदभाई: बताने के लिए है। सापेक्ष बतानेवाले तो बहुत हैं। निरपेक्ष बतानेवाले तो विरले कहीं-कहीं किसी-किसी जगह पर (मिलते हैं)। आहाहा! ये गुरुदेव आए इसलिए बात बाहर आई। आहाहा! बाकी हम तो कुछ जानते नहीं थे। हम तो स्थानकवासी, प्रतिमा को भी नहीं मानते। समझ गए? आहाहा! सच्चाई, हकीकत जो है वह है। मगर योगानुयोग गुरुदेव का भेंटा हुआ! आहाहा! 'यह पुण्यतत्त्व कषाय की मन्दता है'। अरे! हम जिससे धर्म मानते हैं और ये पुरुष (उसको) 'कषाय की मन्दता' कहते हैं। अरे! 'कषाय' विशेषण लगाया पुण्य को! यह क्या? भड़क उठे हम। आहाहा! कषाय की मंदता, व्यवहार धर्म नहीं, ख्याल रखना। जोखिम है व्यवहार धर्म कहने में। वो तो पकड़ लेगा (कि) व्यवहार धर्म तो है न, भले निश्चय धर्म बाद में होगा, व्यवहार धर्म तो हो गया कि नहीं? कषाय की मन्दता है ऐसा कह ना! व्यवहार धर्म कहाँ है? निश्चय के बिना व्यवहार नाम आता नहीं। आहाहा!

सत्य तो बाहर आया है कोई! आहाहा! अलौकिक सत्य बाहर आया है। लायक जीव का काम हो जाए। यह जब कषाय की मन्दता है ऐसा कहा तो खलबली अंदर में हो गई। आहाहा! हम मार्ग भूले, हम मार्ग भूले हैं और न्याय से बात (है)। तीव्र कषाय को पाप कहते हैं और मंद कषाय को पुण्य कहते हैं, धर्म-बर्म (नहीं है)। आगे कषाय विशेषण हो (तो) उसमें धर्म कहाँ से हो? धर्म तो अकषाय परिणाम हो, इतना तो ख्याल आता है न? व्यवहार धर्म मत बोलना, कषाय की मन्दता है। वह दुःख का कारण वर्तमान में है और भविष्य में भी (है)। परंपरा (से) दुःख का कारण है, उसमें सुख का कारण है नहीं; और स्वयं बंधरूप है और बंध का कारण होता है। आहाहा! पुण्यतत्त्व बंधरूप है और बंध का कारण, निमित्त कारण है। आहाहा!

पर्याय द्रव्य बाजू ढली अर्थात् आश्रय लिया, अभेद हुई ऐसा कहने में आता है। ऐसा वस्तु का स्वतंत्र स्वरूप है। ये गुरुदेव का व्याख्यान (है)। ३:३० से ४:३० हाँ, ४:३० तक है, टाईम है। अभी

दूसरा पारा चालू होता है। १३ नंबर की गाथा का एक पारा पूरा हो गया (अभी) दूसरा पारा।

बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे देखा जाये तो:- यानि भेदज्ञान छोड़कर, बाह्य स्थूल दृष्टि, एकत्वबुद्धि करके देखें तो जीव और अजीव हैं तो भिन्न-भिन्न, तो भी **बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे**, एकत्व करके **देखा जाये तो:- जीव-पुद्गलकी अनादि बन्धपर्यायके समीप जाकर** बंध के समीप जाकर हों! मुक्ति के समीप जाकर नहीं। ख्याल रखना। आहाहा!

बन्धपर्यायके समीप जाकर एकरूपसे अनुभव करनेपर जीव और अजीव जैसे एक हैं, ऐसा उसको **अनुभव करनेपर** अर्थात् ऐसा जानने पर और ऐसा मानने पर, **यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं,** आहाहा! भूतार्थ की सिद्धि भी कब की? समझने जैसा (है) यह तो समयसार है। आहाहा! कि जीव और अजीव का लक्ष करके, एकत्वबुद्धि करके परिणमता है इसलिए नवतत्त्व उत्पन्न होते हैं। नहीं तो नवतत्त्व का जन्म नहीं होता। है जरा सूक्ष्म बात। आहाहा!

यह टीका है अलौकिक। अमृतचंद्र आचार्य की टीका 'न भूतो न भविष्यति'। ऐसी टीका कोई द्रव्यानुयोग में है नहीं। भावलिंगी संत तो बहुत हुए मगर इस प्रकार की योग्यता, इस प्रकार का क्षयोपशम (नहीं है)। स्थिरता तो सबको तीन कषाय के अभाव पूर्वक का आनंद में एक जैसी है। आनंद में सब भावलिंगी एक जैसे होते हैं, मगर कोई विशिष्ट प्रकार! आहाहा! ये स्व-पर के (हित में) हेतु हो, ऐसे जीव तो कम होते हैं। आहाहा! तीर्थंकर भगवान उत्कृष्ट! आहाहा!

इन दो की एकता करके देखें तो **नवतत्त्व भूतार्थ हैं**। ऐसा नहीं कहा, ऐसा नहीं कहा कि एकत्व करता है तो पुण्य-पाप-आस्रव-बंध चार तत्त्व भूतार्थ हैं, ऐसा नहीं कहा, ख्याल रखना! **नवतत्त्व भूतार्थ हैं** क्योंकि चार के सद्भाव में, और चार के अभाव में तीन प्रगट होते हैं, यानि नौ हो गए। **यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं**। जहाँ तक भेदज्ञान नहीं है, एकत्व करता है, तहाँ तक ये नौ तत्त्वरूप परिणमता है।

और एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर। वो बंधपर्याय के समीप जाकर देखता था तो आत्मा नौरूप ही दिखता था। आत्मा, आत्मा है तो एक मगर एकरुप न दिखकर के नौरूप दिखता था। क्यों दिखता था नौ रूप? यह बंध के समीप जाकर देखता है, निमित्त के संग (से) देखता है, निमित्त का लक्ष करके देखता है, इसलिए नौ भेद उसको दिखते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: निमित्त तो होता है न - ऐसा कहते हैं न? निमित्त तो होता है न?

पू. लालचंदभाई: आहाहा! वास्तव में क्या कहें?

एक बार की बात है। अभी तो मैं मुंबई गया था इसलिए वाँचन नहीं करता। मैं पहले तो इधर राजकोट में वाँचता (प्रवचन करता) था। बाद में तो अभी १५ साल से मैं नहीं वाँचता हूँ मंदिर में। पहले वाँचते थे तब क्या हुआ? एक बार की बात है कि एक बार बात ऐसी आई वाँचन में, कुदरती आ गई। मैंने कहा कि **इस जगत में कोई निमित्त नहीं है** (कानजी स्वामी-हीरक जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ), इस जगत में सब उपादान हैं, जगत में निमित्त नहीं है - ऐसा कहकर छोड़ दिया। ऐसा (कोई) स्पष्टीकरण नहीं किया।

तो हम दो-चार (लोग) रविवार को घूमने बाहर जाते थे तत्त्व-चर्चा हेतु - चंदूभाई डॉक्टर, मोदी

साहब, मोदी साहब थे। मोदी साहब ने कहा, पूछा कि, 'लालचंदभाई! यह आपने क्या कहा? कि निमित्त जगत में नहीं है कोई?' कि नहीं है निमित्त; सब ज्ञेय हैं। निमित्त तो कोई है ही नहीं। 'ये क्या कहा आपने?' कि ये निमित्त तो एक व्यक्तिगत की अपेक्षा से निमित्त है। समष्टीगत की अपेक्षा से सब ज्ञेय हैं, कोई निमित्त नहीं है। निमित्त, जिसको निमित्त लगता है उसको नैमित्तिक पर्याय प्रगट होती है। निमित्त नहीं लगे और उपादान लगे, सब उपादान ज्ञेय हैं तो इधर ज्ञान प्रगट हो जाता है।

मुमुक्षु: बराबर, नैमित्तिक पर्याय उत्पन्न नहीं होती।

पू. लालचंदभाई: ऐसा कहा था। भाई का अभी प्रश्न आया न, निमित्त तो है कि नहीं?

मुमुक्षु: नहीं।

पू. लालचंदभाई: निमित्त है कि ज्ञेय है? वो भी ज्ञेय, व्यवहार-ज्ञेय है कि निश्चय-ज्ञेय है?

मुमुक्षु: व्यवहार।

पू. लालचंदभाई: वो व्यवहार-ज्ञेय कब है? कि निश्चय-ज्ञेय जानने के बाद। आहाहा! लंबी-चौड़ी बात है अंतर की सब।

मुमुक्षु: निमित्ताधीन दृष्टि छूट गयी।

पू. लालचंदभाई: इष्ट है, सबकी छूट जाए! आहाहा! सबकी छूट जाए तो सबको ज्ञान होगा न, वो ज्ञेयपने जानने में आएगा। छहद्रव्य ज्ञेय हैं कि निमित्त?

मुमुक्षु: ज्ञेय हैं।

पू. लालचंदभाई: सिद्ध भगवान को छहद्रव्य जानने में आते हैं ज्ञान में, वो ज्ञेय हैं कि निमित्त? ऐसे सम्यग्दर्शन होने के बाद सब निमित्त हैं कि ज्ञेय हैं? सब ज्ञेय हैं। आहाहा! श्रुतज्ञान में सब ज्ञेयपने जानने में आते हैं, जैसे केवली को जानने में आये ऐसे, व्यवहार। आहाहा! निश्चय से तो यह ज्ञेय एक ही है। यह तो 'निमित्त नहीं' यह बात जब कही तब मोदी साहब बोले कि, 'भाई! आज क्या यह वाँचन में कहा? निमित्त नहीं?' (पू. लालचंदभाई:) निमित्त तो है नहीं कहीं। (मोदी साहब:) तो क्या है? (पू. लालचंदभाई:) (कि) सब ज्ञेय हैं। आहाहा!

एक बार ऐसा बनाव बना ७५वीं जन्म-जयंती थी मुंबई में। गुरुदेव की ७५वीं जन्मजयंती। समझे? ७५वीं। तो एक अभिनंदन-ग्रंथ निकलता था, तो सब विद्वानों को कोई न कोई लेख देना (था)। ऐसा उस टाइम मैंने ये लेख दिया एक। उसमें ऐसा लिखा कि ये जो आठ कर्म हैं न, **आठ कर्म, वो ज्ञेय हैं निमित्त नहीं हैं**[1]। 'निमित्त' तो अज्ञानी उसका नाम बिगाड़ता है, नाम बिगाड़ दिया उसने, अज्ञानी ने नाम बिगाड़ दिया है। तो एक कर्म जाति है, आठ कर्म। समझे? तो ये कर्मों की एक सभा भरी, कर्म की कि ये सोनगढ़ के संत कहते हैं कि आठ कर्म ज्ञेय है और सारा जगत कहता है कि निमित्त है, तो हमारा नाम बिगाड़ दिया- सचमुच हम ज्ञेय हैं कि निमित्त हैं? तो ऐसा करो कि अपने पाँच परमाणुओं को सीमंधर भगवान के पास भेजो फैसला लेने के लिए क्योंकि वो (सोनगढ़ नामक) इधर branch (शाखा) तो है, लेकिन उसको कोई मानता नहीं है। कोई है न, अति सयाना, कि सोनगढ़

1 कानजी स्वामी-हीरक जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ, (पृ. १४१-१४३) में से श्री लालचन्द अमरचन्दजी मोदी, राजकोट का लेख। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध: https://www.atmadharma.org/jainbooks.html#lalchandbhaiArticles or https://www.atmadharma.com/jainbooks.html#lalchandbhaiArticles

की बात हम नहीं मंजूर करेंगे, सीमंधर भगवान पास से जाकर आओ, फैसला करो।

तो पाँच परमाणु (को) जाने में तो टाइम (तो) लगता नहीं है। गए सामने, सीमंधर भगवान के सामने।

(सीमंधर भगवान:) अच्छा! इधर तक धक्का खाया आपने? हमारी branch तो सोनगढ़ में थी।

(पाँच परमाणु:) कि साहब! सोनगढ़ का थोड़े जीव मानते हैं, सब मानते नहीं (हैं)।

ये लिखा है उसमें। हों! लिखा है। तो अच्छा!

(पाँच परमाणु:) तो साहब! हमारा नाम क्या है आप फरमाओ?

(सीमंधर भगवान:) कि तुम्हारा नाम ज्ञेय है। तुम्हारा नाम निमित्त नहीं है। निमित्त तो वो अज्ञानी जीव मूर्ख तेरा नाम बिगाड़ता है।

अच्छा! इधर आए वो पाँच परमाणु, सभा भरी। (पाँच परमाणु:) हमारा नाम ज्ञेय है (ऐसा) जाहिर हो जाओ। हमारा नाम निमित्त नहीं है।

तो निमित्त का लक्ष छूटकर ज्ञान का लक्ष आते ही वो ज्ञेय दिखाई देगा। निमित्त दिखाई देगा नहीं। वो तो नैमित्तिकरूप से परिणमता है वहाँ तक निमित्त है। (जब) जाननेरूप परिणमता है तब निमित्त कहाँ है? वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। आठ कर्म हों! निमित्त नहीं है। रमणभाई! निमित्ताधीन दृष्टिवाले को निमित्त दिखता है। निमित्ताधीन दृष्टिवाले को - निमित्त तो है न? निमित्त तो है न? स्वभावदृष्टिवाले को जगत के अंदर सब ज्ञेय हैं। आहाहा! कोई इष्ट नहीं और कोई अनिष्ट नहीं है।

वो दूसरा पारा है उसमें क्या कहा? कि जब एकत्वबुद्धि करता है तो **नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं,** मगर जब **एक जीवद्रव्यके स्वभावके** ओर देखे तो। अजीव की ओर देखो तो नवतत्त्व खड़ा हो जाएगा। मगर एक जीवद्रव्य के स्वभाव की ओर देखे तो **स्वभावके समीप जाकर**। उसमें बंध पर्याय के समीप जाकर। आहाहा! निमित्त की तरफ लक्ष करेगा तो नवतत्त्व दिखेगा; ज्ञायक तरफ लक्ष करेगा तो नवतत्त्व नहीं दिखेगा।

एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं, नवतत्त्व कोई दिखते नहीं। नवतत्त्व की उत्पत्ति ही नहीं होती है। राग की उत्पत्ति हो तो वीतरागभाव की उत्पत्ति हो। राग की ही उत्पत्ति नहीं होती है तो वीतरागभाव भी दिखता नहीं, वीतरागी प्रतिमा दिखती है। आहाहा! अजब-गजब की बात है! वीतरागी-द्रव्य ऊपर दृष्टि पड़ने पर वीतराग होता है, ऐसी पर्याय प्रगट हो तो जानने में आती है कि नहीं? तुझे पर्याय को जानने की भावना अभी भी है। आहाहा! अरे! द्रव्य को जान न, पर्याय तो सहज में जणित (जानने में आ)जाएगी। उसमें पुरुषार्थ नहीं आता है। पुरुषार्थ द्रव्यस्वभाव को, सामान्य को जानने में, स्वभाव को (जानने में) पुरुषार्थ है। विशेष तो सहज जानने में आ जाता है। आहाहा!

अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर देखो तो सब निमित्त-नैमित्तिक संबंध से उत्पन्न हुआ भेद, नौ का भेद, वो भेद अभूतार्थ है। अभेद में भेद दिखता नहीं, अभेद की दृष्टि में भेद दिखता नहीं है। अभेद में भेद नहीं है और अभेद की दृष्टि हुई उसमें भेद दिखता नहीं है। वो अभेद हुआ उसमें भी भेद दिखता नहीं है। तीनों में भी भेद दिखता नहीं है;

त्रिकालीद्रव्य में भेद नहीं है, दृष्टि हुई उसमें भेद नहीं है, दृष्टि और द्रव्य अभेद करके उसमें भी नौ (भेद) नहीं है। आहाहा! अलौकिक चीज है। समयसार है ये तो।

(वे जीवके एकाकार स्वरूपमें नहीं हैं;) अपने आत्मा का जो एकाकार स्वरूप ज्ञानानंद परमात्मा है उसमें नौ का भेद है (नहीं), है नहीं इसलिए दिखता नहीं है। अभेद में भेद दिखाई देता नहीं है। एक ३७ नंबर का श्लोक है बहुत अच्छा। इसके अनुसंधान में थोड़ा (उसको लेते हैं)। आहाहा! आज एक घंटा मिल गया हमको इसलिए जरा। क्योंकि कार्यक्रम है न, इसलिए। नहीं तो एक घंटा करें मगर कार्यक्रम चलता है न।

३७ नंबर का श्लोक है अजीव अधिकार का। २९ बोल का उकरड़ा (कूड़े का ढेर) कहते हैं न सब। उसके पीछे एक श्लोक बनाया अमृतचंद्राचार्य ने। मार्मिक श्लोक है! **जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक भाव कहे [सर्वे एव] वे सब ही**, सर्वे एव, सर्वे एव, **वे सब ही इस पुरुष (आत्मा) से** यानि इस शुद्धात्मा से, पुरुष यानि आत्मा, स्त्री-पुरुष की बात नहीं है। **इस पुरुष (आत्मा) से** आत्मा से **भिन्न हैं;** यह चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवसमास हैं? कि हैं। हैं को कौन 'ना' बोलता है? मगर मेरे से भिन्न हैं। छहद्रव्य हैं? कि हैं मगर मेरे से भिन्न हैं। आहाहा! वाद-विवाद से पार नहीं पड़ेगा। आहाहा! **इसलिये अन्तर्दृष्टिसे देखनेवालेको** ये जीव के स्वभाव के समीप जाकर देखे तो, इसका खुलासा है। आहाहा! **अन्तर्दृष्टिसे देखनेवालेको** अंतर्दृष्टिसे देखे उसको, उसको, ऐसा। दूसरे को नहीं, खबर नहीं पड़े। **अन्तर्दृष्टिसे देखनेवालेको यह सब दिखाई नहीं देते**। लेकिन होने पर भी नहीं दिखते? आहाहा! हों तो हों, हों तो हों, परंतु अंतर्दृष्टि से देखें तो अकेला चिदानंद भगवान आत्मा, ध्रुव परमात्मा जानने में आता है, उत्पाद-व्यय जानने में आते नहीं।

यह सब दिखाई नहीं देते, तब क्या दिखाई देता है? ये सब दिखते नहीं, तो क्या दिखता है? **मात्र**, only (सिर्फ), फक्त। मात्र यानि only, फक्त **एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है** आहाहा! सर्वोपरि तत्त्व उसका अर्थ **केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखाई देता है।** अभेद में भेद दिखता नहीं क्योंकि भेद उसमें है नहीं और भेद की दृष्टि करने पर अभेद दिखता नहीं और अभेद की दृष्टि में भेद दिखता नहीं। आहाहा! प्रमाण से भेदाभेद जानने में आता है वो विषय अलग है। ये विषय, ये (तो) अनुभव करने के लिए है। अनुभव होने के बाद भेदाभेद की बात करना, पहले अभेद की बात तो कर! कि भेदाभेद तो जानें कि ये भेदाभेद हैं? परंतु भेदाभेद कौन जाने? कि (जब) भेद को न जाने तब। (पहले) अभेद को जाने, बाद में भेदाभेद का ज्ञान उसको प्रमाण से होता है। समय हो गया।

ॐ